

ABSTRACT

Beginning with the accession of Punjab to the colonial empire in 1849 and the imposition of Urdu as an official language, this study traces the subsequent shaping of an Urdu literary culture through urban institutions, reformist enterprises, and literary production over a period of roughly six decades until 1910. Through the lens of biographical, journalistic, statistical, literary writings, and archival texts, I have examined the construction of a vernacular public that negotiated modernity at a crucial period in colonial Indian history. This study interrogates the ways in which colonial urban identity crystallized around an 'official language', and articulated ideas of modernity.

This thesis develops two important ideas. The first is the key role of colonial policies in producing an Urdu ecosystem to facilitate governance, thereby also producing new socio-economic hierarchies. The reformist organizations and print materials studied indicate the contours of a self-conscious public. I locate this public in relation to the crucial role played by the urban space, its institutions and instruments, in shaping its identity. This relationship between the colonial urban and literary modernity of Urdu informs the second intervention of my study, namely, the significance of this period to the Urdu literary tradition. This study highlights the post-1857 generation of Urdu poets, publicists, and literary figures of colonial Punjab as an intermediate generation, falling between the pre-1857 poets and the modernists (the Progressive Writers of the 1930s). The evolution of Urdu poets and their poetics during this period is studied closely to understand the shaping of Urdu as a modern literary language.

सारांश

औपनिवेशिक साम्राज्य में 1849 में पंजाब के विलय और उर्दू को आधिकारिक भाषा के रूप में लागू किए जाने से आरम्भ करते हुए, मैं इस अध्ययन में लगभग छह दशकों (1910 तक) की अवधि में शहरी संस्थाओं, सुधारवादी प्रयासों और साहित्यिक सृजन के माध्यम से उर्दू की एक साहित्यिक संस्कृति के क्रमिक निर्माण का अन्वेषण करती हूँ। जीवनियाँ, पत्रकारिता-संबंधी लेखन, सांख्यिकीय अभिलेख, साहित्यिक रचनाएँ और अभिलेखीय दस्तावेजों की दृष्टि से मैंने उस 'देशज सार्वजनिकता' (vernacular public) के निर्माण का विश्लेषण किया है, जिसने औपनिवेशिक भारत के इतिहास के एक निर्णायक दौर में आधुनिकता के साथ संवाद और समायोजन किया। इस अध्ययन में मैं यह पड़ताल करती हूँ कि किस प्रकार औपनिवेशिक शहरी पहचान एक 'आधिकारिक भाषा' के इर्द-गिर्द आकार ग्रहण करती गई और उसने आधुनिकता के विचारों को अभिव्यक्त किया।

इस शोध-प्रबंध में मैं दो महत्वपूर्ण विचारों को विकसित करती हूँ। पहला, शासन को सुगम बनाने के लिए औपनिवेशिक नीतियों की उस केंद्रीय भूमिका का विश्लेषण है, जिसने एक उर्दू पारिस्थितिकी (Urdu ecosystem) का निर्माण किया और इसके साथ-साथ नई सामाजिक-आर्थिक श्रेणियों को भी जन्म दिया। जिन सुधारवादी संगठनों और मुद्रित सामग्रियों का मैंने अध्ययन किया है, वे एक आत्मसचेत सार्वजनिकता की रूपरेखा को उजागर करते हैं। मैं इस सार्वजनिकता को शहरी परिदृश्य, उसकी संस्थाओं और उपकरणों की निर्णायक भूमिका के संदर्भ में स्थापित करती हूँ, जिन्होंने उसकी पहचान को गढ़ने में योगदान दिया। औपनिवेशिक शहरी जीवन और उर्दू की साहित्यिक आधुनिकता के बीच यही संबंध मेरे अध्ययन के दूसरे हस्तक्षेप का आधार बनता है— अर्थात् उर्दू की साहित्यिक परंपरा के लिए इस कालखंड का महत्व।

इस अध्ययन में मैं 1857 के बाद की पीढ़ी के उर्दू कवियों, जनमत-निर्माताओं और औपनिवेशिक पंजाब के साहित्यिक व्यक्तित्वों को एक मध्यवर्ती पीढ़ी के रूप में रेखांकित करती हूँ, जो 1857 से पूर्व के कवियों और आधुनिकतावादियों (1930 के दशक के प्रगतिशील लेखक) के बीच स्थित थी। इस अवधि में उर्दू कवियों और उनकी काव्य-प्रवृत्तियों के विकास का मैंने निकटता से अध्ययन किया है, ताकि यह समझा जा सके कि उर्दू किस प्रकार एक आधुनिक साहित्यिक भाषा के रूप में आकार ग्रहण करती गई।